आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

विद्यावार्ता™

संपादक मंडल

मुख्य संपादक

प्रा.बहिरम देवेंद्र (हिंदी) डॉ. योगिता रांधवणे (मराठी)

सहायक संपादक

प्रा.नारायण हिरडे डॉ. राजेंद्र ठाकरे

डॉ. नीतिन थोरात प्रा. बापु देवकर

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205

Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.

At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed

Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295

harshwardhanpubli@gmail.com, vaidyawarta@gmail.com

All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors

Scanned by CamScanner

60	कबीर और संत तुकाराम के नारी संबंधी विचार डॉ. भास्कर उमराव भवर	318
61	राष्ट्रीय संत तुकडोजी महान समाजसुधारक प्रा. हिरडे नारायण एन.	322
62	समन्वयवादी संत रविदास डॉ. सुभाव नामदेव जाधव	326
63	संत कबीर एवं संत तुकाराम के विचारों की प्रासंगिकता डॉ. नानासाहेब जावळे	328
64	'संत कबीरदास' का सामाजिक प्रदेय– प्रा. शिंदे नवनाथ सर्जेराव,	331
65	संत कबीर के साहित्य की प्रासंगिकता डॉ.गोरखनाथ किर्दत	335
66	समाज के नवनिर्माण में संत साहित्य का योगदान डॉ.नवनाथ गाढेकर	338
67	हिंदी संत साहित्य में भक्ति का स्वरुप प्रा. नयन भादुले -राजमाने	341
68	संत कबीर के विचारों की प्रासंगिकता प्रा. प्रदिप बबनराव पंडित	344
69	संत साहित्य में सामाजिक चेतना राजेश सिंह	347
70	संत–साहित्य की प्रासंगिकता डॉ राकेश कुमार सिंह	351
71	हिंदी संत साहित्य की उपादेयता रवि कुमार,	356
72	समकालीन हिंदी कविता: स्वरुप एवं संकल्पना प्रा.रेश्मा चंद्रभान सोनवणे	365
73	संत साहित्य की प्रासंगिकता का प्रश्न ऋषिकेश कुमार	370
74	मध्ययुगीन संत साहित्य की प्रासंगिकता शेख रुबीना	373
75	संत साहित्य की प्रासंगिकता (संत कबीर के संदर्भ में) सचिन मदन जाधव	378
76	संत कबीर के साहित्य की प्रासंगिकता. प्रा. डॉ. संतोष येरावार	381
77	"भारतीय संतो का साहित्यिक योगदान" सरपे सुप्रिया भारत	384
78	'मराठी संत ज्ञानेश्वर और नामदेव की सामाजिक भूमिका' डॉ.शेख शहेनाज अहेमद	388
79	कबीर की प्रासंगिकता प्रा. शितोळे नामदेव ज्ञानदेव	391

Scanned by CamScanner

66

संत कबीर के साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ.गोरखनाथ [illegible]
[illegible]
[illegible] महाविद्यालय [illegible]

युग परिवर्तन के साथ धर्म के क्षेत्र में भी काफी परिवर्तन हुए हैं। पहले 'साधु न करे जमात' वाली उक्ति चरितार्थ होती थी किंतु अब तो लगभग हर एक साधु की जमात चलती है। जो अपने चारों तरफ मिथ्या आडम्बरों का जितना बड़ा जाल रखता है, उतना ही महिमा युक्त साधु माना जाता है और उसके इर्द–गिर्द राजनीतिक नेताओं तथा लोकप्रियता की होड़ ही होड़ दिखाई पड़ती है। एक युग था जब काशी के कबीरचौरा मठ से राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद होता था और उसकी ध्वनि नगर जातियों, उपजातियों, धर्मों तथा सम्प्रदायों में बंटकर विभक्त भारतीय समाज के हृदय में निनादित होती थी।

वस्तुतः जनमुक्ति के लिए कबीर का संघर्ष अपने आदर्श की एक सम्पूर्ण कल्पना का अविष्कार था। अन्य साधु–संतों की भाँती कबीर ने केवल अपने ही उद्धार की बात नहीं सोची। उनकी व्यक्तिगत साधना भी अपने परिणाम में सामूहिक साधना थी। इसीलिए उनके मोक्ष का स्वरूप अधिक व्यापक रूप में हमारे सामने उद्घाटित होता है। उन्होंने अपने संघर्ष में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों को पारम्परिक रूप से पृथक कर एक नये क्रान्तिकारी रूप में सामने रखा। धर्म से कबीर का तात्पर्य मानव–धर्म से था। हिंदुओं और मुसलमानों में धार्मिक रूढ़ीयों, बाह्याचारों आदि की कठोर निंदा करते हुए कबीर ने धर्म के वास्तव स्वरूप को सामने रखते हुए कहा था–

'जेती देखो आतमा, तेतो सालिगराम'। मनुष्य मात्र की सेवा ही उनकी दृष्टि में सब से बड़ा धर्म है और इस धर्म के सामने पंडित, जोगी, राजा सभी समान है। कबीर ने स्त्री–पुरुष सभी को बंधन मुक्त करने का बीजमंत्र दिया। कबीर ही समाज के सबसे पहले स्वतंत्रता सेनानी थे जिन्होंने मानवमात्र को भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी बंधनों को अस्वीकार करने की प्रेरणा दी थी। उन्होंने ही सबसे पहले धर्म–निरपेक्ष समाज के निर्माण की महत्ता की थी जिसके कारण आज हमारे संविधान ने उसे स्वीकृत किया है। 'अर्थ' के लिए भी कबीर ने समानता का सिद्धांत दिया है। उन्होंने देखा था की उस अर्थ के कारण ही दुःख तथा बेगानी होती दुनिया है–

'बाटै–बाटै सब कोई दुनिया, क्या गिरही–बैरागी।'

साथ ही उन्होंने यह महसूस किया कि समाज में यह अर्थ अपने प्राकृत रूप में न सहज, सायास संग्रहित रूप में है। एक तरफ ऊँची अट्टालिकाओं के विलास हैं दूसरी तरफ झोपड़ियों के आँसू। उन्होंने अर्थ के समान विवरण की कल्पना करते हुए संचय का विरोध किया था–

'साईं इतना दिजिए जामे कुटुम समाय।'
कबीर कहा गरबिया, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि पड़्यों भ्वै लोटणा, ऊपर जामै घास।।

Scanned by CamScanner

अर्थात 'अर्थ' का अधिक संचय पाप का मूल है, अहंकार की जड़ है। इसलिए वे अपनी क्रांति से अर्थ और सत्ता के अहंकार की ऊँचाईयों को तोड़कर सामान्यजन को एक खुला आसमान सौपाना चाहते थे।

'काम' को भी कबीर ने अपने ढंग से सीमित किया है। तृष्णा के उच्छेद की बात कही है। उन्होंने कहा रूखा–सूखा जो भी मिले उसी को खाकर अपने मन को शांत कर लेना चाहिए।

'कहै कबीर कुछ उद्यम कीजै, आप खाय औरन को दीजै।'

स्पष्ट है कि कबीर ने श्रम की महत्ता पर बल दिया है। जहाँ तक 'मोक्ष' का प्रश्न है, कबीर ने अन्तः साधना पर बल दिया है। काशी महात्म्य के संबंध में यह अंधविश्वास प्रचलित रहा है कि जिस प्राणी का देह पात् काशी क्षेत्र में होगा वह सद्यः मुक्त हो जाता है। फलतः लोग अन्य तीर्थों की अपेक्षा काशी में मरने के लिए आने लगे। जीवनभर कुकर्म करने के बाद भी लोग यह आशा रखते हैं कि काशी में मृत्यु के बाद मुक्ति तो मिल ही जाएगी। इस अंधविश्वास को खंड़ित करने के लिए कबीर ने अपने अंतिम काल में मगहर की ओर प्रयाण किया था। व्यक्तिगत रूप से उनके लिए तो–

'जस कासी तस मगर ऊसर' था ही परंतु जनसामान्य की मान्यता– **'मगहर मरे सो गद्दहा होइ'** को खंड़ित करने के लिए ही उन्हें मगहर जाना पड़ा था। उन्होंने बताया कि तुम्हारा इष्ट तुम्हारे भीतर है उसे बाहर खोजना कस्तूरी–मृग का भ्रम है। वस्तुतः कबीर का आत्मदर्शन आत्मसंतुष्टि का उपकरण है और इस तुष्टि के लिए संघर्ष और संकल्प की आवश्यकता थी जिसे कबीर ने सबके सामने स्पष्ट कर दिया है।

कबीर के सामने राष्ट्र की परिकल्पना तो नहीं थी लेकिन एक समाज का अस्तित्व अवश्य था जो लिंग, जाति, धर्म, वर्ण में बहुधा विभक्त था। स्पृश्य–अस्पृश्य, पुरोहित–यजमान, साधु–गृहस्थ, अमीर–गरीब, राजा–प्रजा, स्वधर्मी–विधार्मी, आक्रमक और आक्रांत आदि। किंतु उन्होंने हर विभेद और विषमता का विरोध किया था। कबीर ने अपने समय की मजहबी असहिष्णुता और कट्टरता को एक साथ ललकारा तथा समस्त भेदमूलक व्यवस्थावादी धर्म का विरोध किया था।

"जो तू ब्राह्मण–ब्राह्मणी को जाया, और राह ते काहे न आया।
जो तू तुरूक तुरूकिनी को जाया, पेटहिं काहे न सुनति कराया।।"

ये तर्क व्यवस्थावादी सांप्रदायिक धर्म पर करारी चोट करते थे। कबीर का मानना है कि परमपिता परब्रह्म ने निर्विशिष्ट मनुष्य को उत्पन्न किया किंतु उसे व्यवस्थावादी धर्म ने जाति की विशेषताएँ दी हैं। इस तथ्य का संकेत करते हुए वे कहते हैं–

"अरे भाई दोइ कहाँ से मोही बताओ
बिच ही भरम का भेद लगावो
जेवि उपाइ रचि व्दै धरनी, दीन एक बीच भई करनी
राम–रहिम जपत सुधि गई, उनि माल तसवी लई
है कबीर चेत रे भोंदू, बोलनिहार तुरूक न हिंदू"

हमारी राष्ट्रीय एकता में वर्ण और जाति ही सबसे बड़ी बाधा है। कबीर ने अपने ढंग से इस समस्या को सुलझाया है। उन्होंने कहा है कि जब एक ही मिट्टी और एक ही कुम्हार है तो फिर भेद कहाँ से शुरू होता है–

'एक मटिया एक कुम्हार, एक सबन का सिरजनहार।'

उन्होंने संपूर्ण वर्ण व्यवस्था को ललकारा और उसे पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया–

"जहवाँ से आयो अमर वह देसवा
ब्राह्मण छत्री न सूद्र वैसवा, मुगल पठान न सैयद सेखवा"

Scanned by CamScanner

हमारी राष्ट्रीय एकता के मार्ग में गरीब और अमीर, शोषक और शोषित का निरंतर गहरा होता फर्क पूरी अर्थनीति के खोखलेपन का उद्घोष है। इस प्रकार की आर्थिक विषमता पर कबीर के विचार बड़े स्पष्ट है–

"उदर समाता अन्न ले, तनहिं समाता चीर।
अधिका संग्रह ना करै, ताका नाम फकीर।।"

वस्तुत: आज हमारी संग्रही वृत्ति इतनी तीव्र हो गई है कि हमें जो मील रहा है उससे हमेशा असंतुष्ट रहते हैं और भ्रष्टाचार करने को प्रवृत्त हो रहे हैं।

कबीर ने गुरू के बारे में कहा है कि गुरू गोविंद से भी बढ़कर है किंतु यदि गुरू गलत है तो उसका नतिजा क्या होता है इस बात का संकेत भी किया है–

"जाका गुरू भौ आँधरा, चेला काह कराय।
अन्धे अन्धा पेलिया, दोऊ कूप पराय।।"

वर्तमान समय में अपराध वृत्ति बढ़ती जा रही है। हिंसा, हत्या, चोरी, डकैती, बलात्कार, अपहरण आदि प्रकार के जघन्य अपराध बढ़ते जा रहे हैं। हिंसा के बारे में कबीर का कथन है–

"जीव मत मारो बापुरा, सबका एकै प्रान।
हत्या कबहूँ न छूटिहैं, कोटिन सुनो पुरान।।"

कहना न होगा कि कबीर के विचार हमारे सामाजिक जीवन के हर पक्ष को स्पर्श करते हैं। उनका व्यक्तित्व समाज को समर्पित था। उन्होंने शोषण के खिलाफ आंदोलन के लिए अपनी समूची शक्ति को लगा दिया और शोषित वर्ग को मुक्ति का मार्ग दिया। कबीर ने सरे बाजार में खड़े होकर अपनी ललकार से गरीब और शोषित हृदयों में कर्तव्य के प्राण फूँकने का कार्य किया है। कबीर की प्रासंगिकता तब–तक बनी रहेगी जब तक मनुष्य और समाज अपनी बुराईयों से लिप्त रहेगा। यही कारण है कि राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में कबीर आज भी प्रासंगिक है।

Scanned by CamScanner